मोदाणी सिर्फ एक चुस्त मुहावरा नहीं, राजसत्ता और पूंजी के बीच जादू की झप्पी का एक नया मॉडल है

मोदाणी मॉडल की खासियत यह है कि व्यवसायिक घरानों से गहरे रिश्ते गांठने से मोदी का इकबाल कम नहीं हुआ है. बल्कि सत्ता डंके की चोट पर उगाही कर रही है और पूंजीपति तबके के सामने घुटने टेकने की जगह उनपर हुक्म फटकार रही है.

-योगेन्द्र यादव

'मोदाणी`ने देश की राजनीतिक शब्दावली में अपनी जगह बना ली है. राहुल गांधी के ट्वीट के पहले भी यह शब्द उनकी पार्टी के सोशल मीडिया हमले 'हम अडाणी के हैं कौन' में आ चुका है. संसद में विपक्षी दलों की समवेत स्वर में अदाणी शेयर-घोटाले पर जेपीसी की मांग में इस शब्द की गूंज को सुना जा सकता है.

इस शब्द को चलाने में छोटा-मोटा योगदान मेरा भी है. हिंडनबर्ग रिपोर्ट में हुए खुलासे के बाद अपने वीडियो, सोशल मीडिया पोस्ट और एक लेख में मैंने इस शब्द का इस्तेमाल किया था. हालांकि यह शब्द मेरा गढ़ा हुआ नहीं है. मैंने इसे पहले पहल मध्य प्रदेश के अपने समाजवादी और किसान नेता साथी डॉ. सुनीलम से बीते कुछ सालों में सुना. भारत जोड़ो यात्रा के मेरे सहयात्री और कांग्रेस सेवा दल के अध्यक्ष लालजीभाई देसाई ने मुझे बताया कि उन्होंने ही यह शब्द उन दिनों गढ़ा था जब मोदी गुजरात के मुख्यमंत्री थे. शुक्र कहिए कि लोकगीतों और राजनीतिक नारों पर किसी का`कॉपीराइट नहीं होता, वे हमेशा कॉपीलेफ्ट ही होते हैं.

`मोदाणी`एक नारा है. शब्दों की बाजीगरी है. एक धारदार राजनीतिक हथियार भी है. प्रधानमंत्री पर निजी किस्म के कुंद हमले की बजाय विपक्ष इस हथियार के सहारे बड़े व्यावसायिक घरानों से प्रधानमंत्री की सांठगांठ का आरोप जड़ सकता है. मोदी और अडाणी के बीच जो घनिष्ठता बतायी जाती है, उसे यह उक्ति-वैचित्र्य एक शब्द के भीतर जोड़कर उजागर कर देता है. जिस देश में सूट-बूट की सरकार` सुनकर सत्तापक्ष को छींकें आने लगती हैं (पहले `टाटा-बिड़ला की सरकार`चलता था) वहां मोदाणी नामक तीर विपक्ष के लिए बहुप्रतीक्षित अग्निबाण से कम नहीं.

मोदाणी मुहावरा है तो अवधारणा भी

मोदाणी सिर्फ एक चंट और चुस्त मुहावरा भर नहीं है. अगर इस मुहावरे की अर्थ-ध्वनियों को सुनें तो यह एक राजनीतिक अवधारणा है. एक अवधारणा जो अपने आलोचना की विषय-वस्तु का वर्णन और विश्लेषण दोनों करती है. भारत की राज्यार्थिकी (पॉलिटिकल इकॉनॉमी) अभी जिस जहरीले दौर से गुजर रही है, मोदाणी नाम का मुहावरा उसे एक नाम देता है. यह मुहावरा बताता

है कि मौजूदा सरकार में आर्थिक और राजनीतिक ताकतों के बीच क्या और कैसे संबंध हैं. यह मुहावरा सिर्फ केंद्र सरकार पर चस्पा नहीं होता, इसका दायरा कहीं ज्यादा बड़ा है. इस मुहावरे के सहारे हम समझ सकते हैं कि पूरे सत्तातंत्र के भीतर राजनीतिक और व्यावसायिक ताकतों के बीच कैसी सांठगांठ चल रही है. एक अवधारणा के रूप में मोदाणी नाम का मुहावरा टिकाऊ साबित होगा और इस नाते इसके बारे में तनिक विस्तार से चर्चा कर लेना ठीक है.

इस सिलसिले की पहली और सबसे जरूरी बात तो यही कि : व्यावसायिक दुनिया और राजनीति के बीच सांठगांठ का होना भारत के लिए कोई नई बात नहीं. भारत में लोकतंत्र की शुरुआत के वक्त ही ऐसी सांठगांठ हो चुकी थी. अगर आप इतिहास में थोड़ा और पीछे जायें और स्वतंत्रता-संग्राम के दौर के पन्नों को पलटें तो वहां भी आपको ऐसी सांठगांठ देखने को मिलेगी. अपनी लोकतांत्रिक राजनीति के पहले ही दशक में इस देश ने राजनेताओं और व्यापारियों की मिलीभगत से जुड़े बड़े राजनीतिक घोटाले देखे. पंजाब के दिग्गज मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरों के पतन और ढंक-छिपा दिये गये नागरवाला कांड से लेकर बोफोर्स, 2जी और राफेल तक व्यवसाय-जगत और राजनेताओं के बीच सांठगांठ की बात हमारे राजनीतिक इतिहास का अहम हिस्सा रही है.

व्यवसाय और राजनीति की सांठगांठ का यह नया दौर

क्रिस्टोफर जेफरलो, अतुल कोहली और कांता मुरली के संपादन में `बिजनेस एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया` नाम से एक नया अकादमिक अध्ययन सामने आया है जो बताता है कि गुजरे सालों में कारोबारी दुनिया और राजनीतिक जगत के बीच संबंध किस तरह बदले हैं. इस किताब में संकलित अलग-अलग लेखों में बतलाया गया है कि व्यवसाय-जगत और राजनीति के बीच रिश्ते विशिष्ट कालखंडों में किस तरह बदले और यह भी कि राज्यों के दायरे में इस रिश्ते ने क्या रूप लिया व अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में इस रिश्ते ने क्या शक्ल अख्तियार की.

पुस्तक के संपादकों ने 1990 तक के कालखंड को एक ऐसे दौर के रूप में चिन्हित किया है जिसमें कारोबारी-जगत अपने व्यावसायिक हितों से सीधे जुड़े राजनीतिक फैसलों पर चुनिंदा ढंग से `वीटो`(निषेधाधिकार) का इस्तेमाल करता था. अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के बाद यह रिश्ता अपने दूसरे दौर में पहुंचा. इस दूसरे दौर में व्यवसाय-जगत देश की राजनीति का आम अजेंडा तय करने लगा.

पुस्तक के सम्पादकों का निष्कर्ष है कि 2014 में मोदी के राजनीतिक उदय के साथ व्यवसाय और राजनीति के रिश्ते ने एक और करवट ली है. इन विद्वानों ने व्यवसाय और राजनीति के इस

नये दौर की विशेषता बताते हुए कहा है कि इसमें व्यवसाय-जगत ने सरकार की नीतियों और दलगत राजनीति पर आंशिक रूप से वर्चस्व (हेजेमनी) कायम कर लिया है.

मुझे लगता है, यहां तनिक संशोधन की जरूरत है. हेजेमनी यानी वर्चस्व चाहे पूर्ण हो या आंशिक, राजसत्ता विषयक एक मार्क्सवादी समझ होने के कारण कुछ ऐसा आभास कराता है मानो पूंजीवादी आकाओं के आगे सरकार कठपुतली की भांति नाच रही हो.

इस समझ से यह नहीं जाहिर होने पाता कि बड़े व्यावसायिक घरानों से लेन देन का रिश्ता गांठ लेने पर भी राजनीति की अपनी एक स्वायत्तता और सरदारी कायम रहती है. सो, `मोदाणी` व्यवसाय-जगत और राजनीति की सांठगांठ के नये दौर को चिन्हित करता कोई चालू मुहावरा नहीं है. मोदाणी में अडाणी से पहले मोदी का आना यह इशारा करता है कि इस सांठगांठ में राजनीति हावी है.

आइए, जरा इस मोदाणी मॉडल की कुछ विशेषताओं को समझ लें. पहली बात यह कि इस नये दौर में राजनेताओं और कारोबारियों के बीच सीधा और प्रत्यक्ष गठजोड़ देखने को मिल रहा है. जिस दौर को हमारी राजसत्ता का तथाकथित समाजवादी दौर (ऐसा दौर दरअसल कभी था ही नहीं) कहा जाता है, यह उसके विपरीत है. उस दौर में आंख की शर्म के चलते एक पाखंड कायम था, कारोबारियों से अपने रिश्ते राजनेता लोगों की नजरों से ढंक-छिपाकर रखते थे.

लेकिन अभी बड़े व्यावसायिक घराने अर्थव्यवस्था के अहम क्षेत्रों में देश की अर्थनीति के हिस्सेदार हैं. साथ ही, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कृषि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी उनका दखल स्वीकार कर लिया गया है. ऐसा पहले के वक्तों में अकल्पनीय था. गुजरात के मुख्यमंत्री रहते मोदी की अदाणी के साथ विमान-यात्रा की तस्वीर हमारी राजनीतिक संस्कृति में बड़े बदलाव का प्रतीक है. इस बदलाव को राज्यों में भी लक्ष्य किया जा सकता है—खासकर, देश के दक्षिणवर्ती और पश्चिमवर्ती धनी राज्यों में.

बाजार हित से चुनिंदा बिज़नेस के हित की ओर

दूसरी बात, मोदाणी मॉडल इस बात की सूचना है कि व्यापक बाजार-हित में नीति बनाने का दौर अतीत की बात हो चुका, अब सीधे सीधे चुनिंदा व्यावसायिक घरानों के हित में नीतियां बनायी जा रही हैं. साल 1990 के बाद से जितनी भी सरकारें बनीं यानी संयुक्त मोर्चा की सरकार, राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) की सरकार और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) की सरकार— सबमें एक समान बात थी कि उनकी नीतियां बाजार के हित में बनीं. इस बात के गंभीर आरोप लगे कि ऐसी नीतियों के सहारे कुछ खास व्यवसायियों को फायदा पहुंचाया जा रहा है.

लेकिन, जैसा कि आशुतोष वार्ष्णेय ने लिखा है, चंद कारोबारी घरानों को फायदा पहुंचाने का यह मौजूदा दौर पहले दौर की तुलना में एक गुणात्मक बदलाव का संकेत करता है.

भारत की राज्यार्थिकी (पॉलिटिकल इकॉनॉमी) के प्रकांड विद्वान प्रणब बर्धन ने इस नये दौर को क्रोनी-ऑलिगार्किक कैपिटलिज्म का नाम दिया है. पसंदीदा और चुनिंदा कारोबारियों के साथ राजनीति के याराने के सहारे चलने वाला यह पूंजीवादी कुलीनतंत्र खुले बाजार की प्रतिस्पर्धा की भावना के विपरीत है. लेखक हरीश दामोदरन ने इसे `कांग्लोमेरेट कैपिटलिज्म`(बड़े व्यावसायिक घरानों का पूंजीवाद) का नाम दिया है.

प्रणब बर्धन के शब्दों में कहें तो भारत अब एक निम्न उत्पादकता वाली एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें चुनिंदा और पसंदीदा व्यावसायियों का जोर सबसे ज्यादा है. इस दौर में भारत ऐसा कोई दिग्विजयी कारोबारी नहीं दे पाया जो अतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा कर सके. राजनीतिक दायरे के चहेते बने हुए इस दौर के ज्यादातर व्यवसायी मुख्य रूप से गैर-व्यापारिक चीजों के धंधे में लगे हुए हैं यानी सघन राजस्व-उगाही का एक ऐसा क्षेत्र जहां हद दर्जे का नियमन चलता है और जहां सरकार की कृपा हो जाये तो मोटा मुनाफा कमाया जा सकता है. यह जो सरकारी कृपा-दृष्टि है वह `आत्मनिर्भर भारत` के नाम पर इन व्यावसायियों का बाहरी प्रतिस्पर्धा से बचाव करती है. साथ ही, घरेलू प्रतिस्पर्धा में सरकारी कृपा-पात्र इन व्यावसायियों के सामने कोई टिकता ही नहीं. पूंजीवाद का यह नया मॉडल न सिर्फ गरीबों के खिलाफ काम कर रहा है बल्कि यह खुले बाजार की मुक्त-प्रतिस्पर्धा के सिद्धांत के भी खिलाफ है.

नये तर्ज की तेज होती गैर बराबरी

राजनीति और व्यवसाय के सांठगांठ के इस नये दौर की तीसरी विशेषता है एक नये किस्म की असमानता में तेज बढोत्तरी. जाहिर है कि पूंजीवाद कोई समता मूलक व्यवस्था तो है नहीं और न ही हमारा देश कोई आर्थिक, लैंगिक या जातिगत समानता का नमूना है. फिर भी हाल की वर्ल्ड इनइक्वालिटी रिपोर्ट तथा ऑक्सफेम की रिपोर्ट हमारे देश में जिस हद तक गैर-बराबरी के चढ़ाव को रेखांकित करती हैं वो अभूतपूर्व है. मोदाणी मॉडल ने गैर-बराबरी को एक नये रूप में संस्थानीकृत किया है. यहां फिर से प्रणब बर्धन के शब्दों का सहारा लेकर कहें तो हमारे देश में जिस किस्म की गैर-बराबरी प्रचलित है वह लातिनी अमेरिका के देशों में प्रचलित `कॉन्क्लेव इकॉनॉमी`(संकुल अर्थव्यवस्था) सरीखे हालात पैदा करती है.

कॉन्क्लेव इकॉनॉमी में अर्थव्यवस्था का एक छोटा सा हिस्सा पूंजी-प्रधान और कौशल-प्रधान वस्तुओं की मांग करने वाले धनाढ्य अभिजन की इच्छापूर्ति का क्षेत्र बन जाता है जबकि अर्थव्यवस्था का बड़ा हिस्सा अपर्याप्त मांग और उपलब्ध क्षमता के कमतर उपयोग का शिकार होता है और इस

तरह कुल निवल निवेश तथा रोजगार कम हो जाते हैं. भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व डिप्युटी गवर्नर विरल आचार्य ने हाल ही में ध्यान दिलाया है कि कारोबारी-जगत के `पंचरत्न`– रिलायंस, टाटा, बिड़ला, अदाणी तथा भारती किस तरह बैठे-ठाले ऊंची कीमत वसूलकर मंहगाई को बढ़ावा दे रहे हैं. मोदाणी मॉडल की यह गैर बराबरी तो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक वृद्धि की राह में भी बाधक बनती है.

पर्यावरण को ठेंगा दिखाती नीतियां

मोदाणी मॉडल की चौथी विशेषता है- राजसत्ता के इशारे पर पसंदीदा और चुनिंदा व्यावसायियों के हित में पर्यावरण- सुरक्षा-संरक्षा के नियमों में आड़े-तिरछे ढील देने वाली व्यवस्था. यह बात छिपी नहीं है कि पर्यावरण के प्रति प्रेम-प्रदर्शन और जब-तब स्वच्छ ऊर्जा को बढ़ावा देने के अपने प्रयासों (ज्यादातर तो सौर-ऊर्जा के क्षेत्र में ताकि मोटा मुनाफा अडाणी को जाये) का ढोल पीटने के बावजूद इस सरकार ने पर्यावरण की संरक्षा को ध्यान में रखकर विगत चार दशकों में बनाये गये अहम उपायों को बड़े व्यवस्थित ढंग से कमजोर किया है. बात चाहे भूमि अधिग्रहण कानून की हो या फिर तटीय इलाकों की पर्यावरणीय सुरक्षा से संबंधित नियमों अथवा वनाधिकार कानून की— आप तमाम मामलों में यह पर्यावरण विरोधी रुख देख सकते हैं.

देश के अग्रणी पर्यावरणवादी एक्टिविस्ट आशीष कोठारी का कहना है कि इस सरकार ने कुछ ऐसी प्रक्रियाओं को जन्म दिया है जो पर्यावरण की सुरक्षा के उपायों की अनदेखी करती हैं या यों कहें कि पर्यावरणीय सरोकारों के प्रति ये प्रक्रियाएं `अनपढ़` हैं. साल 2014 में भारत को एन्वायर्नमेंटल प्रोटेक्शन इंडेक्स (पर्यावरणीय सुरक्षा सूचकांक) में 178 देशों के बीच 155वां स्थान मिला था. मोदाणी मॉडल की कृपा कहिए कि साल 2022 में हम एन्वायर्नमेंटल प्रोटेक्शन इंडेक्स में सबसे निचली पायदान पर पहुंच गये हैं यानी 180 देशों के बीच हमारा स्थान 180वां है. सूचकांक (इंडेक्स) के हर संकेतक (इंडिकेटर) पर हमारा प्रदर्शन गिरावट का शिकार दिखता है.

पूंजी और सत्ता के बीच जादू की झप्पी

इस मॉडल की अंतिम विशेषता यह कि इन तमाम मिलीभगत के बावजूद भारतीय राजसत्ता कमजोर कत्तई नहीं हुई है हालांकि, मार्क्सवादी सिद्धांत के चश्मे से देखें तो होना ऐसा ही चाहिए था. मोदी के शासन में राज्यार्थिकी ने जो शक्ल अख्तियार की है उसकी बेहतर समझ बनाने के लिए हमें मार्क्स के अनुयायियों के बनाये राजसत्ता विषयक रूढ़ और गूढ़ सिद्धांतों को नहीं, बल्कि वह पढ़ना चाहिए जो स्वयं कार्ल मार्क्स ने युरोपीय राजशाही के एक नमूने लुई बोर्नापार्ट के बारे में लिखा था. व्यवसायियों से गहरे रिश्ते गांठने से मोदी का इकबाल कम नहीं हुआ है. हम एक ऐसी

राजसत्ता को उभार लेते देख रहे हैं जो डंके की चोट पर उगाही कर रही है और पूंजीपति तबके के सामने घुटने टेकने की जगह उन पर हुक्म फटकार रही है.

इस मायने में मोदाणी मॉडल राज्यसत्ता विषयक नये सिद्धांत की मांग करता है. एक ऐसी राजसत्ता का सिद्धांत गढ़ना होगा जो एक ही साथ ताकतवर भी है और कमजोर भी– ताकतवर राजनीतिक सरपरस्ती और मनमर्जी का इनाम और दंड देने के अर्थ में और कमजोर इस अर्थ में कि वह सख्ती के साथ नियमन नहीं कर पा रही. हमें स्वायत्ता लेकिन संलिप्त राजसत्ता के सिद्धांत की जरूरत है. यूं कहिये कि पूंजी और सत्ता के बीच यह एक ऐसी जादू की झप्पी है जिससे सत्ता पूंजी की गिरफ्त में आने की बजाय पूंजी को गिरफ्तार कर सकती है.

पूंजीवादी लोकतंत्र के भीतर एक बुनियादी विसंगति पला करती हैः लोकतंत्र राज्य-व्यवस्था को समानता के आदर्श की तरफ खींचे लिये जाता है जबकि पूंजीवादी व्यवस्था इसके उलट दिशा में खींचती है. मोदाणी मॉडल ने बड़ी सफाई से ढंकी गई इस विसंगति को उघाड़ दिया है. क्या लोकतांत्रिक राजनीति आज के वक्त में मुठ्ठीभर लोगों के हितसाधन के लिए बहुसंख्यक समाज की सहमति जुटाने का तंत्र भर बन गई है?